शोधामृत
(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-5.375
Vol.-3; issue-3 (July-Sept.) 2026
Page No- 124-130
©2026 Shodhaamrit
DOI- 10.71037/Shodhaamrit.v3i3.17
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :

HANSA SHARMA
शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर.

Corresponding Author :

HANSA SHARMA
शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर.

भारतीय राजनीतिक चिंतन में 'एकात्म मानव' की अवधारणा : दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का दार्शनिक विश्लेषण

सारांश : आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं ने मनुष्य को प्रायः किसी एक आयाम उत्पादक, उपभोक्ता, मतदाता, वर्ग-सदस्य अथवा अधिकार-धारी में सीमित किया है। दीनदयाल उपाध्याय की 'एकात्म मानव' अवधारणा इस विखंडन के विरुद्ध भारतीय दार्शनिक परंपरा से निकला समग्र प्रतिपक्ष प्रस्तुत करती है। यह शोध-पत्र उनके मूल व्याख्यानों, आर्थिक-राजनीतिक लेखन, संकलित वाङ्मय तथा चयनित हिन्दी अकादमिक अध्ययनों का व्याख्यात्मक और तुलनात्मक विश्लेषण करता है। अध्ययन का केंद्रीय प्रतिपादन है कि एकात्म मानववाद केवल वैकल्पिक अर्थनीति या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का घोष नहीं, बल्कि दार्शनिक मानवशास्त्र, संबंधपरक समाज-दृष्टि और नैतिक राजनीति का संयुक्त प्रारूप है। इसमें मनुष्य को देह, भाव-जगत, विवेक और आत्मबोध की संयुक्त सत्ता मानते हुए व्यष्टि, परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता और प्रकृति को परस्पर पूरक वृत्तों में देखा गया है; धर्म को जीवन-धारण की मर्यादा, 'चिति' को राष्ट्रीय स्वभाव और 'विराट' को संगठित सामाजिक ऊर्जा के रूप में समझा गया है। पाठीय विश्लेषण से पाँच प्रमुख विषय-समूह उभरते हैं, समग्र मानव-संरचना, व्यष्टि–समष्टि एकात्मता, धर्म–चिति–विराट, संयमित एवं श्रमसम्मत अर्थनीति और विकेंद्रित संस्थागत व्यवस्था। शोध यह भी रेखांकित करता है कि अवधारणा की नैतिक शक्ति के साथ 'धर्म' और 'चिति' की बहुअर्थता, बहुलतावादी अधिकार-सुरक्षाओं की अस्पष्टता तथा जाति-लिंग प्रश्नों पर अपर्याप्त विस्तार जैसी सीमाएँ आलोचनात्मक पुनर्पाठ की माँग करती हैं।

मुख्य शब्द : एकात्म मानव, दीनदयाल उपाध्याय, भारतीय राजनीतिक चिंतन, धर्म, चिति, विराट, व्यष्टि–समष्टि, अंत्योदय।

1. परिचय : भारतीय राजनीतिक चिंतन की आधुनिक यात्रा औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति के साथ समाप्त नहीं हुई; स्वतंत्रता ने उससे अधिक कठिन प्रश्न सामने रखा; राज्य और समाज का निर्माण किस मनुष्य-दृष्टि पर हो? उपाध्याय का विचार इसी प्रश्न की भूमि पर उगता है। वे पश्चिम से प्राप्त पूँजीवाद और समाजवाद को परस्पर विरोधी होते

हुए भी एक समान दोष से ग्रस्त मानते हैं: दोनों मनुष्य को उसकी पूर्णता में नहीं देखते। उनके लिए राजनीति सत्ता-प्राप्ति का स्वतंत्र व्यवसाय नहीं, संस्कृति, नैतिकता और लोककल्याण को संस्थागत रूप देने का साधन है। इसीलिए राष्ट्र जीवन की दिशा तथा भारतीय अर्थनीति में स्वतंत्र भारत के स्वभावानुकूल विकास-पथ की खोज, उनके दार्शनिक व्याख्यानों की व्यावहारिक पृष्ठभूमि बनती है (उपाध्याय, 1958; उपाध्याय, 2008)।

'एकात्म मानव' का आशय किसी आत्मनिष्ठ, समाज-विमुख व्यक्ति से नहीं है। यह ऐसा मनुष्य है जिसकी भौतिक आवश्यकताएँ, मानसिक आकांक्षाएँ, बौद्धिक विवेक और आत्मिक अर्थ-बोध एक-दूसरे को काटते नहीं, बल्कि संतुलित करते हैं। यही आंतरिक एकात्मता बाह्य संबंधों में परिवार, समुदाय, राष्ट्र और विश्व तक फैलती है। महेश चन्द्र शर्मा ने उपाध्याय के कर्तृत्व में विचार और संगठन के इस अंतःसंबंध को रेखांकित किया है, जबकि राष्ट्रवाद पर हुए अध्ययनों ने उनकी राजनीति को सांस्कृतिक आत्मबोध से जोड़कर देखा है (शर्मा, 2015; मालवीय और रामशंकर, 30–37)।

इस शोध का प्रश्न है: उपाध्याय की 'एकात्म मानव' अवधारणा की दार्शनिक संरचना क्या है, वह भारतीय चिंतन-परंपरा में किन समानताओं और भिन्नताओं के साथ स्थित होती है, और समकालीन लोकतांत्रिक-सामाजिक व्यवस्था के लिए उसकी संभावनाएँ तथा सीमाएँ क्या हैं? पूर्ववर्ती हिन्दी शोध ने इसकी आध्यात्मिक, शैक्षिक, आर्थिक और राष्ट्रीय प्रासंगिकता पर पर्याप्त सामग्री दी है, पर दार्शनिक मानवशास्त्र, सामाजिक सत्ता-विज्ञान और संस्थागत राजनीति को एक ही विश्लेषणात्मक ढाँचे में पढ़ने का प्रयास अपेक्षाकृत कम है। प्रस्तुत अध्ययन इसी रिक्ति को भरते हुए प्रशंसात्मक पुनरावृत्ति के स्थान पर सहानुभूतिपूर्ण किंतु आलोचनात्मक विवेचन अपनाता है (सारोगी, 1995; पाण्डेय, 2025)।

2. साहित्य समीक्षा : उपाध्याय के मूल लेखन का केंद्र एकात्म मानववाद के चार व्याख्यान हैं, किन्तु उनकी अवधारणा को केवल इन्हीं तक सीमित करना उचित नहीं। भारतीय अर्थनीति: विकास की एक दिशा आर्थिक लक्ष्य, श्रम, स्वदेशी और विकेंद्रीकरण को स्पष्ट करती है; राष्ट्र जीवन की दिशा सांस्कृतिक राष्ट्र, लोकतंत्र और संगठन के सूत्र खोलती है; पंद्रह खंडों का दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वाङ्मय इन सूत्रों को भाषणों, लेखों और राजनीतिक टिप्पणियों के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में रखता है। सात खंडों का पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन विषयवार अध्ययन के लिए एक उपयोगी सेतु है। इस पाठ-समूह से स्पष्ट होता है कि व्याख्यानों के सूत्र अलग-अलग नीति क्षेत्रों में क्रमशः खुलते हैं; अतः स्रोतों की अंतर्पाठीय पढ़ाई अनिवार्य है (शर्मा, संपा., 2016; विचार-दर्शन, 1991)।

दत्तोपंत ठेंगड़ी की एकात्म मानवदर्शन: एक अध्ययन आरंभिक और प्रभावशाली व्याख्या है। ठेंगड़ी ने उपाध्याय को किसी बंद सिद्धांत-प्रणाली के निर्माता के बजाय भारतीय जीवन-दृष्टि के आधुनिक सूत्रकार के रूप में पढ़ा। महेश चन्द्र शर्मा की जीवनीपरक और वैचारिक कृतियाँ उनके चिंतन को राजनीतिक कर्म, संगठनात्मक अनुशासन और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के संदर्भ में व्यवस्थित करती हैं। इन अध्ययनों का महत्त्व मूल अवधारणाओं की पारस्परिकता स्पष्ट करने में है, यद्यपि उनका स्वर प्रायः अनुमोदनात्मक है और दार्शनिक पदों की अंतर्निहित अस्पष्टताओं पर अपेक्षाकृत कम ठहरता है (ठेंगड़ी, 2004; शर्मा, 2002)।

चन्द्र प्रकाश सिंह द्वारा संपादित एकात्म मानववाद: विभिन्न आयाम ने विमर्श को बहुविषयी विस्तार दिया। महेश चन्द्र शर्मा का राजनीतिक आयाम राज्य को सर्वशक्तिमान मानने की प्रवृत्ति के विरुद्ध समाज की स्वायत्त संस्थाओं को उभारता है; बजरंग लाल गुप्ता का आर्थिक आयाम उपभोग-संयम, रोजगार और विकेंद्रित उत्पादन पर बल देता है; हरवंश दीक्षित का विधिक आयाम धर्माधिष्ठित मर्यादा और राज्य-विधि के संबंध की पड़ताल करता है। इसी संकलन के प्रासंगिकतामूलक निबंध अवधारणा को इक्कीसवीं सदी के संकटों से जोड़ते हैं (चन्द्र प्रकाश सिंह, 2016; शर्मा, "राजनीतिक आयाम" 22–40)।

पत्रिकीय और शोध-प्रबंधीय साहित्य में धीरज सिंह ने दर्शन की आधारभूत शब्दावली; पुरुषार्थ, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का परिचयात्मक संयोजन किया; सौरभ मालवीय और रामशंकर ने राष्ट्रवाद के प्रतिमानों को विवेचित किया; सुनील कुमार ने वैश्विक संकटों के संदर्भ में इसकी उपयोगिता प्रतिपादित की। राजीव कुमार सारोगी का 1995 का शोध-प्रबंध दार्शनिक आलोचना की आरंभिक व्यापक कोशिश है, जबकि मानस मोहन पाण्डेय का 2025 का अध्ययन शैक्षिक योगदान को केंद्र में लाता है। इस साहित्य से अवधारणा की व्यापकता सिद्ध होती है, पर साथ ही एक रिक्ति भी दिखती है: प्रासंगिकता की घोषणा के समानांतर बहुलवाद, अधिकार, जाति, लिंग और संस्थागत उत्तरदायित्व की कसौटियों पर अधिक कठोर परीक्षण अपेक्षित है (धीरज सिंह, 40–48; सारोगी, 1995)।

3. शोध प्रविधि : यह अध्ययन गुणात्मक, व्याख्यात्मक और तुलनात्मक प्रकृति का है। प्राथमिक पाठ के रूप में एकात्म मानववाद के 2004 के नवम संस्करण को आधार बनाया गया है; सहायक प्राथमिक सामग्री में भारतीय अर्थनीति, राष्ट्र जीवन की दिशा, सम्पूर्ण वाङ्मय और विचार-दर्शन सम्मिलित हैं। द्वितीयक कॉर्पस में पुस्तकें, संपादित ग्रंथ के चयनित अध्याय, हिन्दी शोध-पत्रिकाओं के लेख और दो शोध-प्रबंध शामिल हैं। स्रोत-चयन के तीन मानदंड हैं; हिन्दी भाषा, प्रत्यक्ष विषय-संबंध और प्रकाशन अथवा संस्थागत प्रामाणिकता। कालानुक्रमिक अंतर को ध्यान में रखते हुए बाद की व्याख्याओं को मूल कथनों का स्थानापन्न नहीं, बल्कि ग्रहण-इतिहास माना गया है (उपाध्याय, 2004; शर्मा, संपा., 2016)।

विश्लेषण में दार्शनिक व्याख्या-विधि के साथ निर्देशित विषयवस्तु-विश्लेषण अपनाया गया है। पाठीय इकाई किसी शब्द की मात्र आवृत्ति नहीं, बल्कि वह कथन-समूह है जिसमें मनुष्य, समाज, धर्म, राष्ट्र, अर्थनीति या राज्य का संबंध प्रतिपादित होता है। प्रारंभिक पठन से पाँच कोड बनाए गए: (1) शरीर–मन–बुद्धि–आत्मा, (2) व्यष्टि–समष्टि पूरकता, (3) धर्म–चिति–विराट, (4) श्रम–उपभोग–विकास, और (5) राज्य–समाज–विकेंद्रीकरण। फिर विभिन्न स्रोतों में इन कोडों की अर्थ-संगति, विस्तार और अंतर्विरोध की तुलना की गई (चन्द्र प्रकाश सिंह, 2016; पाण्डेय, 2025)।

तुलनात्मक चरण में गांधी और लोहिया को स्वतंत्र प्राथमिक कॉर्पस न बनाकर प्रयाग नारायण त्रिपाठी के हिन्दी तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से पढ़ा गया है, जिससे शोध का केंद्र उपाध्याय पर बना रहे। अध्ययन सांख्यिकीय दावे नहीं करता; यहाँ 'डेटा' से आशय सत्यापित पाठीय सामग्री और उससे निर्मित अर्थ-प्रतिरूप हैं। निष्कर्षों की विश्वसनीयता के लिए मूल पाठ को व्याख्याओं पर प्राथमिकता, संस्करण-सापेक्ष पृष्ठ-सत्यापन तथा भिन्न विधाओं के स्रोतों से त्रिकोणीकरण किया गया है (त्रिपाठी, 2017; सारोगी, 1995)।

4. उपाध्याय में एकात्म मानव: दार्शनिक विश्लेषण : एकात्म मानववाद का आरंभ किसी शासन-प्रणाली से नहीं, मनुष्य की सत्ता-रचना से होता है। उपाध्याय मनुष्य को "शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय" कहते हैं। शरीर सुख और सुरक्षा चाहता है, मन स्नेह और सौंदर्य, बुद्धि सत्य और विवेक, जबकि आत्मा अस्तित्व का व्यापक अर्थ खोजती है। इनमें से किसी एक को अंतिम मानने पर मनुष्य का संतुलन टूटता है: केवल शरीर उपभोक्तावाद की ओर, केवल बुद्धि शुष्क यांत्रिकता की ओर और केवल आत्मा संसार-विमुखता की ओर ले जा सकती है। एकात्मता इन स्तरों को मिटाती नहीं; उन्हें मर्यादित, समन्वित और उद्देश्यपूर्ण करती है (उपाध्याय, एकात्म मानववाद 38; ठेंगड़ी, 2004)।

इस मानवशास्त्र का नैतिक प्रतिरूप पुरुषार्थ-चतुष्टय है। धर्म अर्थ और काम को निषिद्ध नहीं करता, बल्कि उन्हें ऐसी दिशा देता है कि मोक्ष जीवन से पलायन न होकर उसके उत्कर्ष का क्षितिज बने। उपाध्याय का संक्षिप्त कथन "धर्म, रिलिजन या मजहब नहीं होता" महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ धर्म संप्रदायगत विश्वास के स्थान पर धारण, मर्यादा और संबंधों को टिकाए रखने वाली नियामक बुद्धि है। फलतः अधिकार और कर्तव्य, स्वतंत्रता

और संयम, निजी आकांक्षा और सामाजिक उत्तरदायित्व परस्पर विरोधी नहीं रहते (उपाध्याय, एकात्म मानववाद 52–53; दीक्षित, 78–83)।

व्यक्ति से समाज की ओर संक्रमण भी यांत्रिक अनुबंध द्वारा नहीं होता। समाज व्यक्तियों का गणितीय योग नहीं, अपनी स्मृति, प्रकृति और प्रयोजन वाली जीवंत सत्ता है। 'चिति' राष्ट्र के दीर्घ सांस्कृतिक स्वभाव का नाम है और 'विराट' उस स्वभाव से प्रेरित संगठित कर्मशक्ति का। इन अवधारणाओं में राष्ट्र राज्य से बड़ा है; राज्य उसकी अनेक संस्थाओं में से एक है। दार्शनिक दृष्टि से यह संबंधपरक सत्ता-विज्ञान है, जिसमें व्यक्ति परिवार, समुदाय और राष्ट्र का केवल अंश नहीं, उनका सक्रिय सहनिर्माता भी है (उपाध्याय, एकात्म मानववाद 44, 84; शर्मा, "राजनीतिक आयाम" 22–40)।

आर्थिक क्षेत्र में यही दर्शन मनुष्य को बाजार की माँग या उत्पादन-सांख्यिकी में विलीन होने से रोकता है। उपभोग की मर्यादा संसाधनों पर नैतिक सीमा का संकेत है और "प्रत्येक को काम" श्रम को आय से आगे प्रतिष्ठा और सहभागिता का आधार बनाता है। अतः अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन केवल कुल उत्पादन से नहीं, अंतिम व्यक्ति की गरिमा, स्थानीय क्षमता, रोजगार, प्रकृति-संतुलन और सामुदायिक स्वावलंबन से होना चाहिए। यह दृष्टि संपत्ति-विरोधी नहीं, किंतु संपत्ति के सामाजिक दायित्व से रिक्त निरंकुश स्वामित्व की आलोचक है (उपाध्याय, एकात्म मानववाद 70, 74; गुप्ता, 41–57)।

5. एकात्म मानव: भारतीय चिंतन में तुलना : भारतीय चिंतन में 'पूर्ण मनुष्य' की खोज प्राचीन है, पर उपाध्याय उसका आधुनिक राजनीतिक व्याकरण रचते हैं। उपनिषद्-प्रेरित एकत्व, पुरुषार्थ-संतुलन, धर्म की धारक शक्ति और जीव-जगत की परस्परता उनके चिंतन की पृष्ठभूमि हैं। फिर भी एकात्म मानववाद केवल शास्त्रीय पुनरुक्ति नहीं है; वह इन सूत्रों को राज्य, दल, अर्थनीति, लोकतंत्र, उत्पादन और राष्ट्रीय स्वभाव के प्रश्नों से जोड़ता है। अतीत उसके लिए संग्रहालय नहीं, वर्तमान की कसौटी पर पुनर्सृजित होने वाली जीवित स्मृति है (उपाध्याय, 2008; विचार-दर्शन, 1991)।

गांधी और उपाध्याय में निकटता मनुष्य की नैतिक स्वाधीनता, ग्राम-केंद्रितता, स्वदेशी, श्रम-गरिमा और उपभोग की सीमा में दिखाई देती है। दोनों आधुनिक सभ्यता की उस गति पर प्रश्न करते हैं जिसमें साधन मनुष्य पर शासन करने लगते हैं। अंतर यह है कि गांधी का प्रतिपादन सत्य–अहिंसा, स्वराज और ट्रस्टीशिप की नैतिक भाषा में अधिक मुखर है, जबकि उपाध्याय शरीर–मन–बुद्धि–आत्मा, पुरुषार्थ, चिति और व्यष्टि–समष्टि की श्रेणियों द्वारा एक व्यवस्थित सामाजिक दर्शन बनाते हैं। गांधी का नैतिक प्रयोग व्यक्ति से समाज की ओर बढ़ता है; उपाध्याय का ढाँचा व्यक्ति और समष्टि को आरंभ से ही सहजात मानता है (त्रिपाठी, 2017; शर्मा, 2015)।

लोहिया के साथ तुलना विकेंद्रीकरण, सामाजिक न्याय, छोटे उद्योग और सत्ता के केंद्रीकरण-विरोध पर केंद्रित होती है। दोनों भारतीय परिस्थितियों में आयातित विचारधाराओं की अपर्याप्तता पहचानते हैं। किंतु लोहिया असमानता, जाति, लिंग और साम्राज्यवाद को संघर्ष के स्पष्ट अक्षों में रखते हैं; उपाध्याय संघर्ष की जगह पूरकता और समरसता को मूल सामाजिक नियम मानते हैं। इस कारण लोहिया का चिंतन अन्याय की संरचनाओं को अधिक तीक्ष्ण भाषा देता है, जबकि उपाध्याय सामाजिक विघटन के पार संबंधों की नैतिक पुनर्रचना पर अधिक बल देते हैं। एक संतुलित भारतीय राजनीतिक दर्शन को दोनों अंतर्दृष्टियों संरचनात्मक आलोचना और एकात्म पुनर्निर्माण का संवाद चाहिए (त्रिपाठी, 2017; सारोगी, 1995)।

उपाध्याय की विशिष्टता अंततः 'अद्वैत' को राजनीतिक समानरूपता में बदलने से इनकार में है। एकात्मता का अर्थ विविधताओं का विलय नहीं, उनकी पूरक व्यवस्था है; वे व्यक्ति और समाज में गहरी आंतरिक संबद्धता देखते हैं, पर उनके पृथक दायित्वों को मिटाते नहीं। यहीं यह अवधारणा सांस्कृतिक बहुलता के लिए संभावना खोलती है। साथ ही जोखिम भी उपस्थित होता है: यदि 'चिति' को ऐतिहासिक रूप से गतिशील सामूहिक विवेक के बजाय किसी एक स्थिर सांस्कृतिक पहचान में बाँध दिया जाए, तो एकात्मता बहुमतवादी समरूपता बन

सकती है। अतः इसकी भारतीयता का सबसे प्रामाणिक अर्थ विविधता की संरक्षित सहअस्तित्व-व्यवस्था होना चाहिए (उपाध्याय, एकात्म मानववाद 49; मालवीय और रामशंकर, 30–37)।

6. डेटा विश्लेषण और परिणाम : पाठीय कॉर्पस के कोडित विश्लेषण से पहला परिणाम यह निकलता है कि 'एकात्म मानव' की आधारभूत इकाई जैविक व्यक्ति नहीं, बहुस्तरीय व्यक्तित्व है। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का युग्म एक ऐसी मानक-संरचना बनाता है जिसमें विकास का अर्थ क्षमताओं का संतुलित उत्कर्ष है। द्वितीयक साहित्य में भी यही संरचना बार-बार आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक आयामों की साझा धुरी के रूप में सामने आती है। इससे स्पष्ट है कि उपाध्याय की राजनीति को समझने के लिए पहले उनके दार्शनिक मानवशास्त्र को ग्रहण करना आवश्यक है (धीरज सिंह, 40–48; पाण्डेय, 2025)।

दूसरा परिणाम यह है कि अवधारणा का केंद्रीय संबंध-सूत्र 'पूरकता' है, न कि अलगाव अथवा अनिवार्य संघर्ष। व्यक्ति–परिवार–समाज–राष्ट्र–मानवता–प्रकृति क्रमिक सीढ़ियाँ नहीं, परस्पर प्रवेश करने वाले वृत्त हैं। इस प्रतिरूप में स्वतंत्रता संबंध-विहीन स्वेच्छाचार नहीं और सामाजिकता व्यक्ति-विलोपन नहीं। राजनीतिक निष्कर्ष यह है कि राज्य को समाज की समस्त सृजनात्मकता का स्वामी नहीं होना चाहिए; स्थानीय निकाय, परिवार, सहकार, समुदाय और व्यवसायगत संस्थाएँ सार्वजनिक जीवन की स्वायत्त वाहक हैं (शर्मा, "राजनीतिक आयाम" 22–40; शर्मा, संपा., 2016)।

तीसरा परिणाम धर्म–चिति–विराट की त्रयी से संबंधित है। धर्म व्यवस्था की नैतिक कसौटी, चिति ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दिशा और विराट संगठित क्रियाशीलता का संकेतक है। इनका स्वस्थ संबंध राज्य को मर्यादित और समाज को उत्तरदायी बना सकता है; पर इन पदों को विधिक स्पष्टता के बिना लागू करने पर व्याख्याधिकार कुछ समूहों के हाथ केंद्रित होने का खतरा है। इसलिए धर्म को सार्वभौम न्याय-मर्यादा, चिति को बहुवचनात्मक सांस्कृतिक स्मृति और विराट को लोकतांत्रिक नागरिक-ऊर्जा के रूप में पुनर्परिभाषित करना आवश्यक दिखाई देता है (दीक्षित, 78–83; अग्निहोत्री, 92–98)।

चौथा और पाँचवाँ परिणाम अर्थनीति तथा संस्थागत व्यवस्था से जुड़ते हैं। उपाध्याय पूँजीवाद और समाजवाद के बीच केवल मध्य मार्ग नहीं खोजते; वे लक्ष्य-परिवर्तन करते हैं "मानव का उत्कर्ष और सुख" अर्थनीति की कसौटी है। रोजगार, न्यूनतम जीवन-आश्वासन, स्थानीय उत्पादन, तकनीक की संदर्भानुकूलता और प्रकृति-संयम इस लक्ष्य के साधन हैं। समग्र निष्कर्ष यह है कि एकात्म मानववाद का नीति-मूल्य तभी प्रकट होगा जब वह मापनीय संस्थागत मानकों सम्मानजनक काम, विकेंद्रीकृत निर्णय, संसाधन-न्याय, सामाजिक सुरक्षा और पारिस्थितिक सीमा में अनूदित हो (उपाध्याय, एकात्म मानववाद 81; गुप्ता, 41–57)।

तालिका 1: पाठीय विश्लेषण से प्राप्त प्रमुख विषय-समूह

विषय-कोड	प्रमुख पाठीय संकेत	विश्लेषणात्मक परिणाम
समग्र मानव-संरचना	शरीर–मन–बुद्धि–आत्मा; पुरुषार्थ	विकास का बहुआयामी मानदंड
व्यष्टि–समष्टि	परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता	संबंधपरक स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व
धर्म–चिति–विराट	मर्यादा, राष्ट्रीय स्वभाव, संगठित शक्ति	नैतिक दिशा; पर लोकतांत्रिक पुनर्व्याख्या आवश्यक
अर्थनीति	काम, संयम, स्वदेशी, विकेंद्रीकरण	गरिमामय रोजगार और पारिस्थितिक सीमा
राज्य–समाज	मर्यादित राज्य, स्वायत्त संस्थाएँ	बहुकेंद्रीय सार्वजनिक व्यवस्था

स्रोत: चयनित हिन्दी प्राथमिक और द्वितीयक पाठों का लेखक-निर्मित गुणात्मक वर्गीकरण (चन्द्र प्रकाश सिंह, 2016; उपाध्याय, 1958)।

7. चर्चा : एकात्म मानववाद की सबसे बड़ी दार्शनिक उपलब्धि उसका अविभाज्य मनुष्य है। उदार व्यक्तिवाद में व्यक्ति प्रायः संबंधों से पूर्व मान लिया जाता है, जबकि वर्गवादी प्रतिमान में वह संरचना के भीतर घुल जाता है; उपाध्याय दोनों के बीच संबंधपरक स्वतंत्रता की संभावना रखते हैं। यह दृष्टि आज मानसिक स्वास्थ्य, समुदाय-विच्छेद, जलवायु संकट और काम की अर्थहीनता जैसे प्रश्नों को एक ही नैतिक क्षितिज में पढ़ सकती है। सभी के लिए काम का सूत्र रोजगार को केवल आय नहीं, सामाजिक मान्यता और आत्मविकास की प्रक्रिया बनाता है। इससे कल्याण की बहुआयामी अवधारणा बनती है, जिसमें आर्थिक वृद्धि साधन है और सामाजिक आत्मीयता, मानसिक संतुलन, पारिस्थितिक स्थायित्व और लोकतांत्रिक सहभागिता उसके समकक्ष सार्वजनिक मूल्य हैं (शर्मा, "प्रासंगिकता" 84–91; सुनील कुमार, 12–16)।

किन्तु अवधारणा की शक्ति ही उसकी परीक्षा भी है। 'धर्म' यदि जीवन-धारण की न्यायपूर्ण मर्यादा है तो उसे संविधानसम्मत समानता, अंतःकरण की स्वतंत्रता और अल्पसंख्यक अधिकारों के साथ स्पष्टतः जोड़ा जाना चाहिए। 'चिति' यदि राष्ट्रीय स्वभाव है तो उसे एकरस अतीत नहीं, विवादों, आदान-प्रदान और अनेक स्मृतियों से बनी गतिशील संरचना मानना होगा। इसी प्रकार समरसता का आग्रह जाति, पितृसत्ता और आर्थिक वर्चस्व के वास्तविक संघर्षों को ढकने के बजाय उनके न्यायपूर्ण रूपांतरण का माध्यम बने। अन्यथा नैतिक शब्दावली संस्थागत असमानता को अनाम छोड़ सकती है (सारोगी, 1995; दीक्षित, 78–83)।

इसलिए एकात्म मानववाद का भविष्य पुनरावृत्ति में नहीं, रचनात्मक अनुवाद में है। उसकी अवधारणाओं को नीति-सूचकों में बदलना होगा: स्वास्थ्य और शिक्षा को मानव के शारीरिक-बौद्धिक विकास से, सांस्कृतिक भागीदारी को मन और आत्मबोध से, स्थानीय स्वशासन को व्यष्टि–समष्टि संतुलन से, तथा कार्बन और संसाधन-सीमाओं को संयमित उपभोग से जोड़ा जा सकता है। इस प्रक्रिया में दर्शन किसी दलगत सूत्र के बजाय खुली सार्वजनिक तर्क-पद्धति बनेगा, ऐसी पद्धति जो अपनी सांस्कृतिक जड़ों से पोषण ले, पर आलोचना, बहुलता और संवैधानिक मर्यादा से निरंतर स्वयं को संशोधित करे (अग्निहोत्री, 92–98; उपाध्याय, भारतीय अर्थनीति 1958)।

8. निष्कर्ष : दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानव' भारतीय राजनीतिक चिंतन में मनुष्य की पुनर्स्थापना का प्रयास है। वह शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा को पुरुषार्थ-चतुष्टय से जोड़कर विकास की बहुआयामी कसौटी देता है; व्यक्ति और समाज को विरोधी ध्रुवों के बजाय परस्पर आत्मीय सत्ता मानता है; धर्म, चिति और विराट के माध्यम से राजनीति को नैतिक दिशा, सांस्कृतिक स्मृति और संगठित सामाजिक शक्ति से संबद्ध करता है। इस ढाँचे का आर्थिक निष्कर्ष संयमित उपभोग, गरिमामय काम, स्वावलंबन और विकेंद्रीकरण है, जबकि राजनीतिक निष्कर्ष राज्य की मर्यादा और समाज की संस्थागत सक्रियता है (उपाध्याय, एकात्म मानववाद 70–84; ठेंगड़ी, 2004)।

तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि गांधी की नैतिक स्वराज-दृष्टि और लोहिया की विकेंद्रीकृत सामाजिक न्याय-दृष्टि के साथ उपाध्याय का संवाद भारतीय आधुनिकता को एकाधिक वैचारिक स्रोत देता है। उनकी मौलिकता समग्र मानवशास्त्र को राष्ट्रीय और संस्थागत चिंतन से जोड़ने में है। फिर भी एकात्मता को लोकतांत्रिक रूप से फलदायी बनाने के लिए धर्म को सार्वभौम न्याय, चिति को बहुल सांस्कृतिक चेतना और समरसता को असमानताओं के सक्रिय निराकरण के रूप में पढ़ना होगा (त्रिपाठी, 2017; शर्मा, 2002)।

अतः एकात्म मानववाद को न तो अतीत का अचूक विधान मानना उचित है, न केवल वैचारिक नारा। वह एक खुला दार्शनिक प्रस्ताव है जिसकी प्रासंगिकता उसके आलोचनात्मक विकास पर निर्भर है। जब अंतिम व्यक्ति की गरिमा, प्रत्येक के लिए सार्थक काम, प्रकृति के प्रति संयम, स्थानीय सहभागिता और अधिकार-सम्मत बहुलता एक ही नीति-दृष्टि में संयोजित हों, तभी 'एकात्म मानव' राजनीतिक भाषा से आगे जीवित सामाजिक अनुभव बन सकेगा (चन्द्र प्रकाश सिंह, 2016; पाण्डेय, 2025)।

संदर्भ सूची :

1. अग्निहोत्री, कुलदीप चन्द्र। "दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन की प्रासंगिकता।" एकात्म मानववाद: विभिन्न आयाम, संपादक चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, 2016, पृ. 92–98।
2. उपाध्याय, दीनदयाल। एकात्म मानववाद। नवम संस्करण, जागृति प्रकाशन, 2004।
3. उपाध्याय, दीनदयाल। भारतीय अर्थनीति: विकास की एक दिशा। राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, 1958।
4. उपाध्याय, दीनदयाल। राष्ट्र जीवन की दिशा। संपादक रामशंकर अग्निहोत्री और भानुप्रताप शुक्ल, लोकहित प्रकाशन, 2008।
5. कुमार, सुनील। "वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में एकात्म मानववाद विश्व के लिए एक आशा की किरण।" शिक्षण संशोधन: जर्नल ऑफ आर्ट्स, ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज, खंड 4, अंक 11, नवम्बर 2021, पृ. 12–16।
6. गुप्ता, बजरंग लाल। "एकात्म मानववाद: आर्थिक आयाम।" एकात्म मानववाद: विभिन्न आयाम, संपादक चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, 2016, पृ. 41–57।
7. ठेंगड़ी, दत्तोपंत। एकात्म मानवदर्शन: एक अध्ययन। पंचम संस्करण, लोकहित प्रकाशन, 2004।
8. त्रिपाठी, प्रयाग नारायण। भारतीय चिंतन परंपरा के वाहक: गांधी, लोहिया और दीनदयाल। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2017।
9. दीक्षित, हरवंश। "एकात्म मानववाद: विधिक आयाम।" एकात्म मानववाद: विभिन्न आयाम, संपादक चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, 2016, पृ. 78–83।
10. पाण्डेय, मानस मोहन। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद दर्शन: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन—शैक्षिक योगदान के विशेष संदर्भ में। पीएच.डी. शोध-प्रबंध, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, 2025।
11. पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन। 7 खंड, द्वितीय संस्करण, सुरुचि प्रकाशन, 1991।
12. मालवीय, सौरभ, और रामशंकर। "राष्ट्रवाद के प्रतिमान: पंडित दीनदयाल उपाध्याय।" मीडिया मीमांसा, अप्रैल–जून 2018, पृ. 30–37।
13. सारोगी, राजीव कुमार। एकात्म मानव दर्शन: एक समीक्षात्मक अध्ययन। पीएच.डी. शोध-प्रबंध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1995।
14. सिंह, चन्द्र प्रकाश, संपादक। एकात्म मानववाद: विभिन्न आयाम। अरुंधती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, 2016।
15. सिंह, धीरज। "पंडित दीनदयाल उपाध्याय प्रणीत एकात्म मानव दर्शन: एक परिचय।" शोध मंथन, खंड 9, अंक 4, दिसम्बर 2018, पृ. 40–48।
16. शर्मा, महेश चन्द्र। आधुनिक भारत के निर्माता: पंडित दीनदयाल उपाध्याय। प्रथम संस्करण, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2002।
17. शर्मा, महेश चन्द्र। पंडित दीनदयाल उपाध्याय: कर्तृत्व एवं विचार। प्रथम संस्करण, प्रभात प्रकाशन, 2015।
18. शर्मा, महेश चन्द्र। "एकात्म मानववाद: राजनीतिक आयाम।" एकात्म मानववाद: विभिन्न आयाम, संपादक चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, 2016, पृ. 22–40।
19. शर्मा, महेश चन्द्र। "इक्कीसवीं सदी में एकात्म मानववाद की प्रासंगिकता।" एकात्म मानववाद: विभिन्न आयाम, संपादक चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, 2016, पृ. 84–91।
20. शर्मा, महेश चन्द्र, संपादक। दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वाङ्मय। 15 खंड, प्रथम संस्करण, प्रभात प्रकाशन, 2016।

•